सांख्य दर्शन में पुरुष की अवधारणा

सामान्यतः पुरुष से हमारा तात्पर्य सशरीर व्यक्ति से होता है। किंतु सांख्य दर्शन में पुरुष का अर्थ 'विशुद्ध आत्मा' है, जो शरीर, मन, बुद्धि, अहंकार आदि से सर्वथा पृथक तत्व है।

'सांख्य-प्रवचन-सूत्र' में बताया गया है - "शरीरादि व्यतिरिक्तः पुमान्"।

पुरुष का स्वरूप :- भारतीय दर्शन में जिसे आत्मा कहा जाता है उसे सांख्य दर्शन में 'पुरुष' कहा गया है। पुरुष शुद्ध चैतन्य है। यह चैतन्यता आत्मा की सभी अवस्थाओं (जागृत, स्वप्न और सुषुप्तावस्था) में विद्यमान रहता है। पुरुष स्वयं चैतन्य से प्रकाशित होता है और अन्य वस्तुओं को भी प्रकाशित करता है। पुरुष शरीर, मन, इन्द्रिय, बुद्धि, अहंकार, इत्यादि से भिन्न है। यह निष्क्रिय एवं अकर्ता है। यह अभोक्ता है, किंतु अविद्यावश अपने को वह कर्ता एवं भोक्ता समझता है। इसे दृष्टा भी कहा गया है। पुरुष सदैव ज्ञाता है, यह कभी ज्ञेय नहीं बन सकता। यह निस्त्रैगुण्य है अर्थात तीनों गुणों से रहित है। इसलिए वह स्वभावतः शांत है। यह नित्य, अनादि एवं अनंत है। यह देश और काल के परे है। इसमें सुख-दुःख एवं उदासीनता के भाव नहीं पाये जाते, क्योंकि यह गुणरहित है।

पुरुष की अनेकता :-> सांख्य दर्शन में पुरुष अनेक माने गये हैं। पुरुष की अनेकता की सिद्धि के लिए सांख्य निम्नलिखित तर्क उपस्थित करता है। यथा -

"जन्ममरणकरणानां प्रतिनियमादयुगपत्प्रवृत्तेश्च ॥
पुरुषबहुत्वं सिद्धं त्रैगुण्यविपर्ययाच्चैव" ॥ → सांख्यकारिका, 18.

अर्थात "जन्म, मरण तथा करणों की व्यवस्था से, एक साथ प्रवृत्ति के अभाव से तथा त्रिगुण-भेद से भी जीवात्मा की अनेकत्वता सिद्ध होती है।" जीवात्मा की अनेकता की सिद्धि हेतु पाँच युक्तियों को उपस्थित किया गया है। वे हैं —

(1). जन्म प्रतिनियमात् (व्यवस्था) :→ जन्म व्यवस्था के आधार पर प्राणी अनेक हैं। इस व्यवस्था के अनुसार प्राणियों को जरायुज (पिण्डज - अण्डज) स्वेदज तथा उद्भिज्ज तीन कोटियों में बाँटा जा सकता है। पिण्डज में मनुष्य, पशु आदि आते हैं। पक्षी, सरीसृप को अण्डज कहा जाता है। स्वेदज या ऊष्मज में खटमल, जूएँ आदि तथा उद्भिज्ज में वृक्ष लतादि की गणना की जाती है। इस प्रकार जन्म व्यवस्था के आधार पर प्राणियों का अनेकत्व सिद्ध होता है।

(2). मरणप्रतिनियमात् :→ गृहीत शरीर का त्याग ही मृत्यु है। जो पैदा होता है, वह मृत्यु को अवश्य प्राप्त होता है। यहाँ कोई अमर नहीं है। परन्तु इसके पीछे भी एक व्यवस्था है प्रत्येक प्राणी की एक आयु सीमा होती है। इस प्रकार 'मरण' प्रतिनियम के आधार पर प्राणी अनेक हैं।

(3). करणप्रतिनियमात् :→ प्रत्येक जीवात्मा का एक स्वतंत्र शारीरिक संघटन है तथा उसी के अनुसार उनमें त्रयोदश करणों की एक व्यवस्था है। इस प्रकार 'करण प्रतिनियम' से भी जीवात्मा अनेक हैं।

(4). अयुगपत्प्रवृत्तेश्च :→ जगत् में सभी प्राणी अपनी-अपनी रूचि के अनुसार अभीष्ट की प्राप्ति में प्रवृत्त होते हैं। इस प्रकार 'रूचिभेद' से भी यह अनेक हैं।

(5). त्रैगुण्यविपर्ययात् :→ कुछ प्राणी सत्वगुण की प्रधानता से युक्त होते हैं। जैसे- देवतादि। कुछ रजोगुण से युक्त होते हैं। जैसे- मनुष्य आदि तथा कुछ तमोगुण की प्रधानता से युक्त होते हैं, जैसे - तिर्यग्योनि के पशु - पक्षी आदि।

इस प्रकार से उपर्युक्त पाँच युक्तियों के आधार पर जीवात्मा का बहुत्व (अनेकत्व) सिद्ध होता है तथा ये युक्तियाँ विज्ञान एवं तर्क पर प्रतिष्ठित होते हुए अपने आप में पूर्ण हैं।

पुरुष (जीवात्मा) की अस्तित्व की सिद्धि

सांख्य में जीवात्मा को "पुरुष" पद से अभिहित किया गया है तथा उसकी सिद्धि में पाँच युक्तियाँ प्रतिपादित की गयी हैं। जिनमें से प्रथम तीन जीवात्मा के शारीरिक संघात की व्याख्या करती हैं तथा अंतिम दो युक्तियाँ प्रयोजन से सम्बद्ध हैं।

'सांख्यकारिका' में कहा गया है -

"संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठानात्।
पुरुषोऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च ॥"

अर्थात् "संघात (वस्तु) का अन्य के लिए, त्रिगुण आदि विपर्यय से, अधिष्ठान से, भोक्तृत्व होने से और कैवल्य (मोक्ष) के लिए प्रवृत्ति होने से पुरुष का अस्तित्व सिद्ध होता है"।

(i). संघातपरार्थत्वात् :→ सांख्य दर्शन के अनुसार संघात अर्थात् पदार्थों का अस्तित्व किसी अन्य के उपयोग के लिए ही होता है, जैसे- पलंग का अपने में कोई उपयोग नहीं है। उसका उपयोग व्यक्ति के सोने के लिए है। अर्थात् 'पलंग' जैसे संघात इसके उपयोगकर्ता 'पुरुष' के अस्तित्व को सिद्ध करते हैं।

(ii). त्रिगुणादिविपर्ययात् :→ जगत के भौतिक पदार्थ त्रिगुणात्मक होते हैं, पर कोई ऐसा भी चाहिए जो इन त्रिगुणात्मक पदार्थों का द्रष्टा हो। ऐसा द्रष्टा स्वयं त्रिगुणों से परे 'पुरुष' ही होगा। यही इसका तात्पर्य है।

(iii). अधिष्ठानात् :→ जिस प्रकार से रथ सारथी से प्रेरित होकर ही आगे बढ़ता है उसी तरह शरीर, बुद्धि आदि भी किसी से प्रेरित होकर ही संचालित होते हैं। यह अधिष्ठाता 'पुरुष' है।

(iv). भोक्तृभावात् :→ जगत के पदार्थ जो कि सुख-दुःख आदि उत्पन्न करने वाले हैं, भोग्य हैं, किंतु इनका भोक्ता कौन है? प्रकृति तथा उससे उत्पन्न शरीर, मन,

इन्द्रिय आदि तो जड़ है, इनमें भोग करने की शक्ति नहीं होती। अतः इनके भोक्ता के रूप में 'पुरुष' का अस्तित्व सिद्ध होता है।

(४). कैवल्यार्थ प्रवृत्ति :→ जगत में जीवात्माओं द्वारा दुःख से तथा प्रकृति के बन्धन से मुक्ति-प्राप्ति हेतु प्रयत्न करते देखा जाता है। यह प्रयत्न जड़ पदार्थ नहीं करते। अतः जड़ पदार्थों से अलग चेतन पुरुष का, जो मोक्ष हेतु प्रयत्न करता है, उसका अस्तित्व सिद्ध होता है।

इस प्रकार से उपर्युक्त दो युक्तियाँ परस्पर संबद्ध हैं। भोग एवं कैवल्य द्विविध प्रयोजनों की सिद्धि जीवात्मा के द्वारा ही चरितार्थ है। यद्यपि जीवात्मा के संपूर्ण भोगों को बुद्धि ही संपन्न करती है, परन्तु उसके भोग एवं तत्वज्ञान रूप अपवर्ग के संपन्न करने में बुद्धि केवल साधन बतायी गई है। सुख-दुःख बुद्धि से संबद्ध भले ही हो, परंतु उनकी अनुभूति जीवात्मा को ही हो सकती है; जड़ बुद्धि को नहीं।

इस प्रकार से सांख्य दर्शन में पुरुष (जीवात्मा) एक ऐसा तत्व है जो प्रकृति से पृथक अपना स्वतंत्र अस्तित्व रखता है। यह नित्य, ज्ञानस्वरूप, मुक्त, त्रिगुणातीत, निष्क्रिय (अकर्ता), अभोक्ता, सुख-दुःख से परे तथा अनेक है।

प्रकृति एवं पुरुष में अंतर

प्रकृति	पुरुष
(1). यह जड़ है।	यह चेतन है।
(2). अविद्यात्मक है।	ज्ञान स्वरूप है।
(3). त्रिगुणात्मिका है।	त्रिगुणातीत है।
(4). विकारों को उत्पन्न करने वाली है।	विकारों से परे है।
(5). जगत का आदि कारण है।	जगत से सर्वथा परे है।
(6). सक्रिय है।	निष्क्रिय है।
(7). बंधन का कारण है।	मुक्त है।
(8). देश और काल में है।	देश और काल से परे है।
(9). प्रकृति एक है।	अनेक है।
(10). यह भोग्या है।	भोक्ता है।
(11). प्रकृति अचेतन है (जड़ है)।	चेतन है।

—x—